वनस्पति वाणी

वर्ष : 1 सितम्बर, 1990 अंक : 1

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

मुखपृष्ठ का चित्र : नागलिंगम् के बड़े-बड़े आकर्षक फूल
कोउरोपिटा गुइआनेन्सिस आउब्ल (*Couropita guianensis* Aubl.)
फोटो : डी० एस० पाण्डेय व आर० के० चक्रवर्ती

वनस्पति वाणी

वर्ष : 1 सितम्बर, 1990 अंक : 1

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

सम्पादक मण्डल

डा० बी० डी० शर्मा — प्रधान सम्पादक
डा० यू० सी० भट्टाचार्य — सदस्य
डा० आर० के० चक्रवर्ती — सदस्य
श्री ए० आर० के० शास्त्री — सदस्य
डा० एस० एल० गुप्त — सदस्य

सम्पादन सहायक

श्री नवीन चौधरी

वनस्पति वाणी में प्रकाशित लेखों की मौलिकता एवं प्रामाणिकता तथा व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी हैं।

विषय-क्रम

सन्देश : बी० डी० शर्मा, प्रभारी अपर निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण 3

नाभिकीय ऊर्जा का कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण उपयोग : बी० डी० शर्मा एवं एस० एल० गुप्ता 5

त्रिलोकीनाथ—हिमाचल का एक मनोरम तीर्थस्थल :
भगवती प्रसाद उनियाल, श्रीकृष्ण मूर्ति एवं उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य 10

हरित कक्ष प्रभाव : रथीन कुमार चक्रवर्ती 13

वृक्षारोपण : एक त्योहार : विजय कृष्ण 16

खनिज सम्पदा के सूचक पौधे : आर० सी० श्रीवास्तव 18

ओजोन परत एवं औद्योगीकरण में सम्बन्ध : एस० एल० गुप्ता 20

अस्तित्व : आनन्द कुमार 24

कदम उठाने से पहले : नवीन चौधरी 25

तेजाबी वर्षा : कितना हानिकारक ? : ए० आर० के० शास्त्री एवं एस० एल० गुप्ता 27

प्राकृतिक संसाधनों एवं दुर्लभ लुप्तप्राय वनस्पतियों का संरक्षण—आज की आवश्यकता : आनन्द कुमार 31

नागलिंगम्—एक रोचक तथा विलक्षण वृक्ष : दयाशंकर पाण्डेय एवं रथीन कुमार चक्रवर्ती 33

इन्धनार्थं यदानीतं अग्निहोत्रं तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च ॥
पत्र मूल त्वगादिभिर्य औषधार्थं तु देहिनाम्।
उप कुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्यते ॥

—वराहपुराण अ 162-41-42

वृक्षों के पांच उपकार उनके दैनिक पांच महायज्ञ हैं। वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों के छाया व विश्राम स्थल होकर, पक्षियों के नीड़ बनकर तथा पत्तों, जड़ों व छालों से समस्त जीवों को औषध देकर उपकार करते हैं।

संदेश

भारतीय वनस्पति के सम्यक् अध्ययन-विश्लेषण की दिशा में जो कदम सौ वर्ष पहले उठाया गया था आज भी हम उस पथ पर बढ़ते जा रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान की कोई सीमा रेखा नहीं होती। इस पथ में एक मंजिल पर पहुँचते ही दूसरी मंजिल का निमंत्रण आने लगता है। हमारे सामने विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान के असंख्य वातायन खुले हुए हैं। उन सबों के महत्व को समझने की कोशिश करते हुए हमने कुछ चुनौतियाँ स्वीकार की है ; जैसे—(क) पौध संसाधनों का सर्वेक्षण और अन्वेषण (ख) वर्गीकरण-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन (ग) पौधों को संकटापन्न प्रजातियों की सूची बनाना और संरक्षण करना (घ) भारतीय वनस्पति उद्यानों का रखरखाव तथा (ङ) प्रायोगिक उद्यानों का रखरखाव।

देश के विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन, सर्वेक्षण तथा अनुसंधान हेतु हमारे वैज्ञानिक निर्धारित पद्धति से काम कर रहे हैं। हम देश के समस्त पादप संसाधनों के सर्वेक्षण का प्रयास कर रहे हैं। आर्थिक एवं औषधीय दृष्टि से उपयोगी अनेक पौधे पर्यावरण प्रदूषण या अन्य कारणों से दुर्लभ हो गये हैं। उनके प्रभावी संरक्षण की दिशा में हम अपनी समुचित भूमिका निभा रहे हैं। हमारे कुछ कार्य विशुद्ध वैज्ञानिक धरातल पर होते हैं, जैसे—पौधों की किस्मों, जैव संग्रहण, पादप आनुवंशिक संसाधन, पादप वितरण एवं नामावली सहित वनस्पति संग्रहालयों के सम्बन्ध में डाटा बेस तैयार करना इत्यादि।

आज विश्व में पारि-प्रणालियों (Ecosystem) के महत्व पर उन सबों का ध्यान आकर्षित हो रहा है जिन्हें विज्ञान में रुचि और अभिरुचि है। इसके साथ पर्यावरण प्रभाव अध्ययन का भी ख्याल रखना आवश्यक है। वनस्पति विज्ञान का कृषि से दिन प्रतिदिन सम्बन्ध बढ़ता जा रहा है। कृषि फसलों एवं पौधों के सम्भावित आर्थिक महत्व पर वनस्पति विज्ञान ने गवेषणा के नये द्वार खोलने की चेष्टा की है और इसमें आशानुकूल सफलता मिली है।

वनस्पति का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है वर्गीकरण-विज्ञान (Taxonomy) का अध्ययन। अन्य क्षेत्रों एवं वनस्पति सर्वेक्षण के साथ-साथ हम इस क्षेत्र में भी अपने कार्य के प्रति साकांक्ष हैं। इसे विभिन्न चरणों में पूरा करने की योजना बना ली गई है।

विज्ञान का समस्त अनुसंधान, सर्वेक्षण आदि मानव कल्याण के लिए ही होता है। इन सबकी जानकारी लोगों को मिलती रहे तो लाभदायक होगा। प्रचार प्रसार व संचार के माध्यम इस काम को अत्यन्त सरलता से कर सकते हैं। किन्तु प्रश्न है भाषा का। बहुत लोगों को यह भ्रम है कि विज्ञान के लिए हिन्दी का प्रयोग सम्भव नहीं है। जनसाधारण की भाषा में विज्ञान को अभिव्यक्ति देना बहुत आसान नहीं है। आज अनेक वैज्ञानिक भाषा के स्तर पर जन साधारण के निकट जाने की कोशिश कर रहे हैं। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्रों में किये जा रहे कार्यों से हमें मार्गदर्शन मिलता है। इस संदर्भ में हम सचिव, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अभारी हैं जिनके प्रोत्साहन तथा राजभाषा विभाग एवं संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप-समिति के पथ प्रदर्शन ने हमें यह कदम उठाने का साहस दिया है। आपके सहयोग और सुझाव मिलते रहे तो 'वनस्पति वाणी' विज्ञान के प्रति पूरी निष्ठा के साथ मुखरित होती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कलकत्ता
14 सितम्बर, 1990

—बी० डी० शर्मा
प्रभारी अपर निदेशक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

नाभिकीय ऊर्जा का कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण उपयोग

वी० डी० शर्मा एवं एस० एल० गुप्ता

इस शताब्दी के प्रारम्भ में जब रेडियो सक्रिय विघटन का अध्ययन प्रारम्भ होने लगा था तभी वैज्ञानिकों के समक्ष नाभिकीय ऊर्जा के दुरुपयोग की समस्या अपने विकराल रूप में प्रकट हो चुकी थी। उस समय ही यह सम्भावना बन गई थी कि मनुष्य शीघ्र ही ऊर्जा के स्रोत के रूप में ऐसी अणुशक्ति का स्वामी बन जायेगा, जिससे वह स्वेच्छानुसार अपने जीवन का निर्माण कर सकेगा। साथ ही यह प्रश्न भी उठने लगा था कि क्या वह इस अणुशक्ति के समुचित मानव लाभ एवं विकास हेतु प्रयोग का सामर्थ्य अर्जित कर सकेगा। इतने नाभिकीय अस्त्रों के प्रसार के बाद मनुष्य को आज समझ में आया कि उन्हें अपनी खोजों के परिणामों को मानव-हित के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। आज से 45 वर्ष पूर्व हिरोशिमा और नागासाकी पर आणविक बम वर्षा इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि किस प्रकार नाभिकीय ऊर्जा को मानव जाति के क्रूर विनाश के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

आज इस बात पर विश्व जनमत सहमत है कि नाभिकीय प्रौद्योगिकी का उपयोग विध्वंसकारी उद्देश्यों के बजाय शांतिपूर्ण उद्देश्यों एवं मानव जाति के विकास हेतु होना चाहिए क्योंकि यदि कभी किसी कारण या मनुष्य की गलती से नाभिकीय युद्ध हो गया तो उसके बाद पृथ्वी के विनाश का विदीर्ण दृश्य देखने वाला पक्ष-विपक्ष या तटस्थ, किसी में से कहीं भी कोई नहीं बचेगा। अतएव वर्तमान स्थिति में नाभिकीय ऊर्जा का शांतिपूर्ण कार्यों के लिए उपयोग ही मानव समाज के हित में है।

सौभाग्यवश भारत आज विश्व के उन कुछ देशों में से एक है जो नाभिकीय प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भर है एवं यह देश सुदृढ़ अनुसंधान और विकासशील अधःसंरचना से युक्त है।

किसी भी देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए नाभिकीय ऊर्जा उत्प्रेरक है। आज की परिस्थिति में मनुष्य एवं वैज्ञानिक के रूप में हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट है यानी मानव विकास के मार्ग को ही हमें अपनाना चाहिए जिसकी परिकल्पना आज से 40 वर्षों पूर्व पं० जवाहर लाल नेहरु ने की थी। उनके एवं परमाणु ऊर्जा आयोग के प्रथम अध्यक्ष डा० होमी जहाँगीर भाभा के प्रयत्नों का यह फल है कि आज समस्त देश में अनुसंधान प्रयोगशालाओं और नाभिकीय स्थापनाओं का जाल बिछा हुआ है।

यद्यपि नाभिकीय ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग का मुख्य ध्येय विद्युत पैदा करना है। इसके अलावा मानव जीवन के अन्य क्षेत्रों जैसे चिकित्सा, कृषि उद्योग एवं अन्य विकासोन्मुख क्रियाओं में भी इसका बहुत बड़ा योगदान है जिन पर विहंगम दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है :

ऊर्जा (विद्युत) उत्पादन के क्षेत्र में योगदान :

विश्व के किसी भी देश के आर्थिक विकास हेतु सभी प्रकार के ऊर्जा जिसमें विद्युत प्रमुख है, का उपयोग

आवश्यक है। अधिकांश विकासशील देशों में जीवाश्म ईंधन का बढ़ता अभाव तथा सातवें दशक के तेल संकट (oil crisis) के बाद नाभिकीय ऊर्जा का विद्युत उत्पादन हेतु परियोजना पर तेजी से कार्य आज हो रहा है। पिछले तीन दशकों में लगभग 30 विकासशील देशों में न्यूक्लियर ऊर्जा का उत्पादन लगभग 300 Gwe तक पहुँच गया जो कि विश्व में कुल बिजली उत्पादन का लगभग 17% है। हालांकि समय-समय पर नाभिकीय ऊर्जा के कुल उत्पादन क्षमता में कमी बढ़ोत्तरी एक अथवा कई अन्य कारणों से परिवर्तित होती रही है फिर भी सन् 2000 ई० तक विश्व में कुल नाभिकीय ऊर्जा का उत्पादन 500 Gwe होने का अनुमान है जिसमें से भारत की भागेदारी लगभग 10,000 मेगावाट की होगी जो कि इसके कुल विद्युत उत्पादन का वर्तमान 4% से बढ़कर लगभग 10% हो जायेगा। देश के विभिन्न अंचलों में स्थापित 6 न्यूक्लियर प्लांट—तारापुर एटामिक पावर स्टेशन, रावतभाटा एटामिक पावर स्टेशन, मद्रास एटामिक पावर स्टेशन, नरोरा पावर स्टेशन, कालपक्कम एटोमिक पावर प्रोजेक्ट एवं काकरापार एटामिक पावर स्टेशन से वर्तमान 1232 मेगावाट विद्युत उत्पादन बढ़कर 10,000 मेगावाट करने की योजना सन् 2000 ई० के अन्त तक है।

भारत का वर्तमान विद्युत उत्पादन 47,000 मेगावाट में नाभिकीय ऊर्जा का योगदान केवल 3% है। अन्य में तापीय (63%) जलविद्युत (34%) प्रमुख है। तापीय विद्युत उत्पादन कोयले पर आधारित है जो कि मुख्यतया देश के पूर्वी एवं मध्य क्षेत्र में अवस्थित है। कोयले का वर्तमान भण्डार लगभग 120 बिलियन टन है जो आगामी 125 वर्षों के लिए पर्याप्त है परन्तु भारतीय कोयले में राख की ज्यादा मात्रा तापीय परियोजनाओं के उपयुक्त नहीं है। दूसरे कोयले जलन से तेजाबी वर्षा (Acid rain) जैसे अन्य पर्यावरणीय मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। जल-विद्युत परियोजनाओं में बहुमूल्य वनों का विनाश एवं गाद (मृदा) के कारण बाँधों का जीवन कम होने के कारण देश के आर्थिक विकास में योगदान लम्बी अवधि में नगण्य रह जाता है। ऐसे में केवल नाभिकीय ऊर्जा ही एक मात्र विकल्प रह जाता है जिसके जरिए प्रदूषण रहित विद्युत प्राप्त की जा सकती है।

संयुक्तराष्ट्रसंघ के तत्वावधान में 23 मार्च 1987 को आयोजित नाभिकीय ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग संगोष्ठी में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डा० एम. आर. श्रीनिवासन ने नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए त्रिस्तरीय नाभिकीय पावर प्रोग्राम का जिक्र किया जिसके प्रथम चरण में प्रेसराइज्ड हेवी वाटर रिएक्टर (Pressurized Heavy Water Reactor) का निर्माण, द्वितीय चरण में प्रथम चरण में उत्पादित प्लूटोनियम का उपयोग होने के साथ-साथ थोरियम से यूरेनियम 233 का उत्पादन भी शामिल है। वर्तमान में भारत के पास 70,000 टन यूरेनियम का भण्डार है और आशा है कि अतिरिक्त यूरेनियम भण्डार का पता आने वाले वर्षों में तेल एवं गैस की तरह किया जा सकता है। फिर भी वर्तमान भण्डार से लगभग 3,50,000 मेगावाट विद्युत क्षमता का लक्ष्य 'फास्ट ब्रीडर' की सहायता से इक्कीसवीं शताब्दी के बाद के आधे समय में प्राप्त किया जा सकता है। तृतीय चरण में थोरियम-यूरेनियम 233 ईन्धन चक्र का उपयोग शामिल है।

एक नया ईंधन : समृद्ध यूरेनियम (Enriched Uranium) की जगह भारत ने एक नया ईंधन यूरेनियम-प्लूटोनियम कार्बाइड तैयार किया है जो विश्व के किसी

भी देश के पास नहीं है। इसकी खूबी है कि यह समृद्ध यूरेनियम से ज्यादा प्रभावशाली है और इसका प्रजनन अनुपात भी ज्यादा है। भारत विश्व का ऐसा 7 वां राष्ट्र है जिसने नाभिकीय ऊर्जा चक्र (Nuclear Fuel cycle) में प्रवीणता हासिल की है। भारी पानी रिएक्टरों (Heavy Water Reactors) की अपेक्षा 'फास्ट ब्रीडर', जो कि थोरियम-यूरेनियम 233 चक्र पर आधारित हैं, में कम यूरेनियम लगता है। द्रष्टव्य है कि भारत में थोरियम का प्रचुर भण्डार लगभग 3,20,000 टन है।

ऊर्जा की नई खोज हमारे अस्तित्व से जुड़ी हुई है क्योंकि एक ओर हमारे परम्परागत ऊर्जा के स्रोत तेजी से खत्म होते जा रहे हैं, दूसरी ओर वर्तमान यूरेनियम भण्डार एवं रिएक्टरों से केवल इस सदी के अन्त तक का ही लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा। ऐसी स्थिति में "फास्ट ब्रीडर रिएक्टर' आने वाले वर्षों में कामधेनु रिएक्टर साबित हो सकता है क्योंकि इसमें अच्छा विखण्डन होने से ज्यादा ईंधन मिल जाता है तथा इसमें न्यूट्रानों की गति तेज बनी रहती है। इसके अतिरिक्त न्यूट्रानों को धीमा किए बिना "चेन प्रक्रिया" बनी रहती है।

रेडियो आइसोटोप निर्माण में नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग :

नाभिकीय ऊर्जा का विद्युत उत्पादन में मुख्य योगदान है। इसके अतिरिक्त एक अन्य शान्तिपूर्ण एवं मानव हित में योगदान "रेडियो आइसोटोप (Radio Isotopes) के निर्माण में है जिसका उपयोग चिकित्सा, उद्योग, कृषि एवं अनुसंधान क्षेत्र में काफी विस्तृत है। हमें इस बात पर गर्व है कि हमारा देश भारत रेडियो आइसोटोप और रेडियो फार्मास्यूटिकल्स का एक प्रमुख उत्पादक है। द्रष्टव्य है कि ये रेडियो आइसोटोप प्रकृति में पाये जाने वाले एल्यूमिनियम (Al),बोरन(B), एवं मैगनीशियम (Mg) जैसे स्लैक तत्वों पर अल्फा, प्रोटान, न्यूट्रान, ड्यूट्रान या फोटान कणों की वर्षा करके प्राप्त किए जाते हैं। इन आइसोटोपों की संख्या 500 से अधिक है जिनमें कार्बन, आयोडीन, सोडियम, फास्फोरस, सल्फर एवं कोबाल्ट के रेडियो आइसोटोप प्रमुख हैं।

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC) रेडियो आइसोटोप बनाने वाला एक मात्र संस्थान है। इसमें लगभग 4 वर्ष पूर्व स्थापित 'ध्रुव' रिएक्टर में विविध रेडियो आइसोटोप का नियमित उत्पादन होता है। भा. प. अ. केन्द्र को 1989 में लगभग 2.54 करोड़ रुपये की मुद्रा रेडियो आइसोटोप के वितरण फलस्वरूप देश एवं विदेशों से प्राप्त हुई है।

(i) चिकित्सा क्षेत्र में : इनका उपयोग मनुष्य की जानलेवा बीमारियों के निदान परीक्षण में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार रेडियो आइसोटोपों की मदद से हर वर्ष लगभग 5 लाख रोगियों को लाभ होता है। इसकी सहायता से कैंसर जैसे असाध्य रोगों का भी पता प्रारम्भिक अवस्था में लगाकर रोगी की जान बचाई जाती है।

चूंकि रेडियो आइसोटोपो से उत्सर्जित किरणों की वेधन क्षमता बहुत अधिक होती हैं, इससे इलाज का तरीका बहुत ही सुगम है। उदाहरण के लिए कोबाल्ट-60 की सिकाई (Radio therapy) कैंसर में की जाती है। आयोडीन के आइसोटोप का प्रयोग जिगर, गुर्दे और मस्तिष्क की बीमारियों में होता है। आयोडीन-125, जो पहले आयात किया जाता था, का अब भारत में ही निर्माण हो रहा है। इसका इस्तेमाल औषधि के रूप में

त्रिलोकीनाथ—हिमाचल का एक मनोरम तीर्थ स्थल

भगवती प्रसाद उनियाल, श्री कृष्ण मूर्ति व उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य

"ओलिम्पस पर्वत की चोटियों पर देवताओं का वास है, जहाँ वो स्वयं में एक अपूर्व दैवी पृथकत्व के सनातन और अनन्त आनन्द से अभिभूत रहते हैं तथा पर्वत के नीचे रहने वाले मनुष्यों के दु:खों, दलित मानवता के कष्टों से उदासीन, निस्पृह और निर्विकार रहते हैं।" ऐसा सोचना था उन प्राचीन ग्रीक लोगों का। प्राचीन भारतीय संस्कृति में भी हिमालय के विशाल, उन्नत और मनुष्य की पहुँच से परे पवित्र हिमाच्छादित शिखरों पर देवताओं का वास माना गया है, परन्तु हिन्दू, ग्रीक लोगों की दूसरी धारणा से भिन्न मत रखते हैं। इनके देवता अपने अद्भुत महिमा मंडित गौरवपूर्ण स्वरूप के साथ-साथ अत्यन्त उदार, परोपकारी और कृपा प्रदान करने वाले भी हैं।

हिमालय का यह स्वरूप है हमारी संस्कृति में। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, मन मोहक पर्वत श्रृङ्खलायें, कलकल करते झरने, शान्त झीलें, सुरम्य घाटियाँ, धार्मिक स्थल, पेड़-पौधे व जीव-जन्तु बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। अपनी अद्भुत प्राकृतिक सुन्दरता व वन सम्पदा के लिये हिमालय विश्व प्रसिद्ध है।

संसार की प्राय: समस्त जातियों के अपने पवित्र तीर्थ-स्थान हैं, या कहिये कि अपने पुनीत स्मारक हैं जो व्यक्ति विशेष, महान आत्माओं या अवतारों की स्मृति दिलाते हैं। अनादि काल से भारत की पवित्र भूमि ऋषि-महर्षि, साधु महात्माओं से सेवित एवं पूजित रही है और हिमालय तो विशेष रूप से देव-भूमि माना गया है। उत्तरी हिमालय के क्षेत्र में ऐसी अनेक घाटियाँ हैं जिनमें कलकल निनाद करती हुई नदियों के किनारे अनेक धार्मिक स्थल हैं। इनमें बहुत से ऐसे स्थल भी हैं जहाँ पहुँचने के लिए मनुष्य को अनेक प्राकृतिक विपदाओं, शारीरिक कष्ट और यातनाओं से जूझना पड़ता है। ऐसा ही एक स्थान त्रिलोकीनाथ है जो हिमालय प्रदेश के लाहुल-स्पीती जिले में ऊपरी चिनाब घाटी में स्थित है। प्रस्तुत लेख में इसी दुर्गम परन्तु मनोरंजक यात्रा का विवरण है। यह यात्रा इस दुर्गम स्थान से पौधों के नमूने एकत्र करने के लिये सन् 1971 में जुलाई-अगस्त महीनों में की गई थी। इस यात्रा के पीछे एक उद्देश्य यह भी था कि पागी घाटी क्षेत्र का, जो ऊपरी चिनाब घाटी से लगा हुआ है जैवीय संरक्षण किया जाना निश्चित हुआ था।

इस स्थान तक पहुँचने के लिये दुर्गम रोहताँग दर्रा (3980 मीटर) पार करना पड़ता है। जब मनाली-लेह राष्ट्रीय मार्ग का निर्माण नहीं हुआ था तब यह दर्रा पैदल पार करना पड़ता था। इस कठिन यात्रा का विवरण कोरादेली (1928) ने बड़े रोमांचक ढंग से दिया है। अब इस मार्ग के बन जाने से यह यात्रा सुगम हो गई है। अनुकूल मौसम में बस से हम रोहताँग दर्रा पार कर लाहूल घाटी तथा चिनाब घाटी में विभिन्न स्थानों तक पहुँच सकते हैं। मनाली से उदयपुर एक दिन में बस द्वारा पहुँचा जा सकता है।

रोहतांग दर्रा पार करते ही दृश्यावलि बदल जाती है। मनाली की हरी-भरी वादियाँ व्यक्ति का साथ छोड़ देती हैं तथा सामने आ जाती है कठोर, शुष्क, भयावह पर्वत-श्रृङ्खलायें, हिमाच्छादित उतुङ्ग शिखर, विशालकाय हिमनदों का फैलाव और अत्यन्त ठण्डी तथा भीषण वेग से चलती हवायें। रोहतांग पहाड़ के विकट ढलान पर चलते हुये चन्द्रा नदी के बहाव के साथ कोकसार तक पहुँचते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हम एक अन्तहीन ढलान पर उतरते चले जा रहे हैं। कोकसार पर हम चन्द्रा नदी पार कर नदी के दायें (उत्तरी) तट पर आ जाते हैं। यहाँ से सिस्सू तथा उसके भी आगे गोदला तक यद्यपि ढलान नहीं के बराबर है फिर भी प्रकृति का वही कठोर और शुष्क स्वरूप दीख पड़ता है। रास्ते में स्कैबियोसा स्पेसियोसा तथा नेपेटा इरियोस्टेचिया की झाड़ियाँ ही चारों तरफ दिखाई पड़ती हैं। थोड़ी बहुत हरियाली वहीं दिखाई पड़ती है जहाँ कोई पानी का सोता बहता दिखाई पड़ता है अथवा जहाँ जहाँ ढलानों पर सिंचाई करके खेती की जाती है। गोंदला के आगे सड़क फिर ढालू हो गई है। यहाँ जहाँ-तहाँ हेराक्लियम थाम्सोनी की झाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। पीर पंजाल पर्वत श्रृङ्खलाओं के अन्दर बहती हुई इस चन्द्रा नदी का संगम टाँडी पर भागा नदी से होता है। चन्द्रा भागा नदियों में ही एक प्रकार से लाहूल घाटी के सारे हिमनदों का जल एकत्रित होता है। टाँडी ही चिनाब नदी का उद्गम स्थल है। यह ऊपरी चिनाब घाटी में थिरोट पर लाहूल के क्षेत्र को पार कर चम्बा जिले की पाँगी घाटी में पहुँचती है और किश्तवाड़ तथा जम्मू से होती हुई पाकिस्तान में चली जाती है। ऊपरी चिनाव घाटी में किशतवाड की तरफ से आने का मार्ग अभी अत्यन्त दुर्गम है। वैसे लोग चम्बा में मणिमहेश के दर्शन करके त्रिलोकीनाथ की यात्रा इस रास्ते से भी करने का दुस्साहस करते हैं।

टाँडी तक प्रकृति का भयावह स्वरूप देखने में आता है, परन्तु टाँडी से आगे प्रकृति मनोरम हो जाती है। टाँडी से उदयपुर तक का क्षेत्र अत्यन्त हरा भरा तथा मनोरम है। इसी क्षेत्र में इस घाटी की अधिकतम आबादी है। यहाँ पर चारों तरफ सैलिक्स के लहलहाते वृक्ष हैं तथा हरे भरे सीढीनुमा खेत हैं जिन में जौ तथा कोटू की उपज होती है तथा आलू व अन्य सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इस क्षेत्र के अपेक्षाकृत हराभरा होने के कारण इसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। चन्द्रा घाटी के समान इस क्षेत्र में वेग से चलने वाली ठण्डी हवायें नहीं हैं क्योंकि पूर्व से आने वाली ये भीषण हवायें कार-दाँग के पास चिनाब के मुहाने पर ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित पर्वतमालाओं से टकराकर उत्तर की तरफ भागा घाटी की ओर मुड़ जाती हैं। टाँडी उदयपुर क्षेत्रों का हराभरा होने का एक और कारण है इस क्षेत्र में चिनाब नदी की अनगिनत सहायक उपनदियाँ।

लाहूल में इस ऊपरी चिनाब घाटी को मनचाट के नाम से भी जाना जाता है। इसे पाटन घाटी भी कहते हैं। लाहूल स्पीति में यहीं एक ऐसा क्षेत्र है जो काफी घना बसा हुआ है। यहाँ काफी घने वन भी हैं। चिनाव नदी का घुमावदार बहाव, हरे-भरे गाँव, सीढ़ीनुमा खेतों का जाल अत्यन्त मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यह सुन्दरता और भी बढ़ जाती है जब हम चिनाव नदी के बायें (दक्षिणी) तट पर दूर-दूर तक फैली हुई पर्वत श्रृङ्खलाओं की उत्तरी ढलान पर गहरे हरे रंग के पाईनस वाली चियाना और पीसिया स्मीथियाना के वृक्ष और दायें (उत्तरी) तट की पर्वत श्रृङ्खलाओं के दक्षिणी ढलान पर

जूनीपेरस पाँलीकार्पोस की झाड़ियों का नयनाभिराम दृश्य देखते चलते हैं।

चिनाव नदी के बहाव की दिशा में, टाण्डी से लगभग 42 कि० मी० की दूरी पर नदी के बायें तट पर त्रिलोकीनाथ का पवित्र स्थान है। मन्दिर छोटा परन्तु सुन्दर है और एक बड़ी चट्टान के कगार पर स्थित है जो पास में बसे किशोरी गाँव से कुछ ऊँचाई पर है। किशोरी गाँव से मन्दिर तक पहुँचने के लिये सैलिक्स के पेड़ों के मध्य से, सीढानुमा खेतों से होते हुए एक कठिन चढ़ाई पार करनी पड़ती है। मन्दिर समुद्र तल से लगभग 2900 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। इस मन्दिर के पीछे दूर-दूर तक हिमाच्छादित पर्वत श्रृङ्खलायें एक मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करती हैं तथा चिनाव का घुमावदार प्रवाह इन उत्तुङ्ग पर्वत श्रृङ्खलाओं में अदृश्य होता हुआ प्रतीत होता है। मन्दिर के पीछे, नदी के बायें तट पर फैली हुई पर्वत श्रृङ्खलाओं की उत्तरी ढलानों पर दूर-दूर तक पाइनस वालीचियाना और पीसिया स्मीथियाना के वृक्षों का विस्तार तथा लगभग 3500 मीटर की ऊँचाई पर पहुँचते-पहुँचते इन वृक्षों का विलुप्त होता हुआ दृश्य अद्भुत है। इस ऊँचाई के बाद पर्वतों का नग्न स्वरूप सामने आता है जहाँ पर पाँलीगोनम एफीने का लाल कालीन के समान फैलाव है।

अगस्त के अन्तिम सप्ताह में, जब मौसम हल्का सा गरम तथा सुहावना होता है, त्रिलोकीनाथ में एक मेला लगता है। इस मेले में दूर-दूर से लोग आकर्षक रंगीन परिधानों में सजधज कर, चिड़ियों के पंख तथा ओरोक्जाइलम इण्डिकम नामक पौधे के पंखनुमा बीजों से सजी टोपी पहनकर सम्मिलित होते हैं। ये लोग ढोलक तथा बाँसुरी की तान पर घण्टों थिरकते हुये नृत्य करते हैं। इस मेले का अवलोकन अपने आप में एक सुखद अनुभव है।

★

पश्यतैनान् महाभागान् परार्थैकान्त जीवितान्।
वातवर्षातप हिमान् सहन्ते वारयन्ति नः॥

—भागवत्

देखो, कितने बड़े भाग हैं इन वृक्षों के जो केवल इसलिए जीते हैं कि दूसरों का भला हो। कितनी महानता है उनकी कि वे आँधी, वर्षा और धूप की प्रखरता सहते हुए भी हमारी रक्षा करते हैं।

हरित कक्ष प्रभाव

रथीन कुमार चक्रवर्ती

हमलोग जिस वातावरण से परिचित हैं वह धीरे धीरे बदल रहा है। जैसे कि जहाँ ज्यादा वर्षा होती थी वहाँ पर अब कम वर्षा हो रही है और जहाँ पर वर्षा कम होती थी वहाँ अधिक वर्षा हो रही है। इसी तरह शुष्क जगहों में जहाँ पर वर्षा नहीं होती थी वहाँ अब अधिक वर्षा हो रही है। अचानक कभी-कभी वगैर मौसम के वर्षा हो जाती है, जिसका मौसम के अनुसार कोई समय नहीं होता। इसी तरह कभी-कभी कुछ स्थानों में अधिक गर्मी या अधिक ठंढ पड़ जाती है। पारिस्थितिक एवं पर्यावरण वैज्ञानिक इस परिवर्तन के विषय में अनुसन्धान कर रहे हैं। क्योंकि इस वातावरण परिवर्तन का जन साधारण के ऊपर काफी प्रभाव पड़ता है।

वैज्ञानिक लोग ऐसा अनुमान कर रहे हैं कि भूमंडल का तापमान बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इस बढ़ते हुए तापमान का कारण क्या है? यह क्यों बढ़ रहा है? यह प्रकृति का कोई परिवर्तन है अथवा अन्य कोई कारण? किस लिए यह परिवर्तन हो रहा है?

ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का तापमान काफी बढ़ जाएगा और अगले पचास वर्षों के भीतर 2° से० बढ़ने की उम्मीद है। इस तापमान वृद्धि का पौधों, जीव-जन्तु और मानव समाज के उपर काफी ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। इस बढ़ते हुए तापमान से प्राकृतिक स्थिति बिगड़ने की सम्भावना है। इससे हिम प्रदेश का जमा हुआ बर्फ पिघलने से समुद्री जल सतह में 50 से० मी० से एक मीटर तक एवं और अधिक वृद्धि की सम्भावना है। इनके अतिरिक्त तूफान आदि की भी आशंका है।

वायुमण्डल के अवयवों में से एक कार्बन डाइ आक्साइड हवा से भारी होने के कारण भूतल के ऊपर रहती है। इसकी मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। लगभग सभी जीव समुदाय श्वसन प्रक्रिया में कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ते हैं। लेकिन वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड की सीमा बढ़ नहीं सकती। पौधे प्रकाश संश्लेषण में वायुमण्डल से कार्बन डाइ आक्साइड लेकर शर्करा बनाते हैं और इस प्रक्रिया में उसी मात्रा में आक्सीजन छोड़ते हैं। इसके बाद जो कार्बन डाइ आक्साइड बचती हैं वह विशाल महासागर और जलाशयों में घुल जाती है। चट्टानें भी इस गैस को अवशोषित करती हैं। इस तरह वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ नहीं पाती।

फिर भी वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड का परिमाण बढ़ रहा है। 1850 में जहाँ 0.025 प्रतिशत कार्बन डाइ आक्साइड था 1950 में वह बढ़कर 0.030 प्रतिशत और वर्तमान में 0.034% है। इस दर से यदि कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ती रही तो सन 2050 तक इसका परिमाण 0.050% या उससे अधिक हो सकता है। इसके कारण वायुमंडल का तापमान 1.50 से 1.60 से० बढ़ जाएगा। कम्प्यूटर की गणना के अनुसार ये आँकड़े अपर्याप्त और भयावह हैं क्योंकि 2050 ई० तक तापमान

और बढ़ने की सम्भावना है। कार्बन डाइ आक्साइड के साथ साथ वायुमण्डल में नाइट्रस आक्साइड, मिथेन क्लोरोफ्लूरा कार्बन एवं ओजोन का परिमाण भी बढ़ रहा है।

वायुमण्डल में इन गैसों के बढ़ने के कई कारण हैं— जैसे मिट्टी के नीचे दबी हुई कार्बोनीकृत ईंधन (कोयला, पेट्रोल, डीजल, ईंधन गैस आदि) का अधिक इस्तेमाल, कल-कारखाना एवं तापविद्युत केन्द्र से निर्गत धुआँ, जन-संख्या बढ़ने के साथ नगर-गाँव में मोटरगाड़ियों का ज्यादा व्यवहार। सबसे बड़ा कारण है बढ़ती आबादी के लिए तेजी से वन भूमि का विनाश कर नगर स्थापना, रास्ते बनाना, नए नए कारखाने, पानी और बिजली के लिए परियोजनाओं का विकास, हजार-हजार एकड़ जमीन खेती के लिए तैयार करना आदि। इनके कारण प्रकृति का सन्तुलन नष्ट हो रहा है। वन भूमि विनाश और वृक्षों की कटाई के समय हम ये सब भूल जाते हैं।

ईंधनार्थं यदानीतं अग्निहोत्रं तदुच्यते,
छाया विश्राम पथिकै पक्षिणां निलयेन च ॥
पत्रमूल त्वगदिभिर्यं औषधार्थं तु देहिनाम्
उप कुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्यते ॥
—वराहपुराण

भूमण्डल में ये गैस जमा होने के कारण इस तरह तापमान के बढ़ने को वैज्ञानिकों ने "हरित कक्ष प्रभाव" आख्या दी है। हरित कक्ष पौधों की सुरक्षा के लिए बनाया जाता है। उसमें गर्म देशों के पौधों को शीत देशों में भी उगाया जा सकता है।

इन हरित कक्षों के छत काँच के बने होते हैं। दिन में सूर्य किरणें काँच पार करके आसानी से कक्ष के भीतर आती हैं एवं कक्ष गरम हो जाता है। लेकिन रात को जब शीत अधिक होती है तब कक्ष में जमा हुआ ऊष्मा विसरित होकर बाहर नहीं जा पाता। काँच इस ताप को रोकता है जो कक्ष को गर्म रखता है। कक्ष गर्म रहने से पौधे का कोई नुकसान नहीं होता है। शीत प्रधान देशों में सभी वनस्पति उद्यान, सार्वजनिक उद्यान, कृषि केन्द्रों में हरित कक्ष बनाकर उष्णदेशीय पौधे लगाए जाते हैं और ये पूरी सजीवता के साथ बढ़ते हैं। वायुमण्डल में जो कार्बन डाइ आक्साइड गैस की परत जमती है वह हरित कक्ष के काँच के छत के रूप में काम करता है। सूर्य की किरणें इस गैस की परत भेदकर बाहर नहीं जा सकती। ये ऊष्मा कार्बन डाइ आक्साइड परत के नीचे घिर जाता है और वायुमण्डल धीरे-धीरे गरम होता जाता है। इसलिए यह प्रक्रिया "हरित कक्ष प्रभाव" कहलाता है।

वायुमण्डल के नीचे के भाग में जैसे कार्बन डाइ आक्साइड तापमान बढ़ा रहा है वैसे ही ऊपर के भाग— बहुत ऊपर—जिसे स्ट्रैटोस्फेयर कहा जाता है, वहाँ भी ओजोन नामक एक गैस की बहुत मोटी परत है। भूतल से 25 कि० मी० ऊँचाई पर यह सबसे घना रहता है। सूर्य से कुछ खतरनाक किरणें निकलती हैं; जैसे अल्ट्रा-वायलेट (पराबैंगनी)। ओजोन परत में किसी कारण छिद्र होने से या हल्का होने से खतरनाक किरणें वायुमण्डल में प्रवेश कर सकती हैं इससे वनस्पति और जीव जगत को भारी नुकसान होगा। इससे भूमण्डल का तापमान भी बढ़ने की आशंका है। 1985 में ब्रिटिश वैज्ञानिक फारमैन और उनके साथियों ने जानकारी दी कि अण्टार्कटिक क्षेत्र के ओजोन परत में कई छिद्र दिखाई पड़े। इसके अलावा कुछ जगहों में ओजोन परत बहुत हल्का हो गया ; जैसे दूर गगन में कहीं हलके और कहीं भारी मेघ आच्छादित होते हैं।

ओजोन परत में बदलाव का कारण क्या है ? वैज्ञानिकों

के अनुसार ठण्डा करने की मशीन, शीत-ताप-नियंत्रक का फ्लूरन गैस, इत्र, शैम्पू में मिलाया हुआ क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रोजन उर्वरक, कृत्रिम रंग आदि ऊपर जाकर ओजोन के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया कर ओजोन परत को नष्ट कर देते हैं। अन्तरिक्ष यान, जेट यान, राकेट आदि भी ओजोन स्तर के नष्ट होने के कारण हैं। वायुमण्डल के नीचे के भाग – टोपोस्फेयर – में कई रासायनिक प्रकिया के बाद ओजोन जमा होता है जहाँ उसे नहीं रहना चाहिए।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ वायुमण्डल पर बहुत असर पड़ रहा है, पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है। इस स्थिति को यदि नहीं रोका जाए तो आने वाले शताब्दी में भूमण्डल के वातावरण में इतना परिवर्तन आएगा कि वनस्पति और जीव जन्तु का बचना मुश्किल हो जायगा। आक्सीजन की कमी होने के कारण शायद वर्तमान पेट्रोल पम्प की तरह जगह जगह पर आक्सीजन पम्प खोला जायगा जहाँ लोग आक्सीजन के लिए जाएँगे।

वायुमण्डल को सुधारने के लिए सबसे बड़ा हथियार है वृक्षारोपण। वृक्ष कार्बन डाइ आक्साइड सहित और कई गैसों का अवशोषण कर लेते हैं। यह शुद्ध आक्सीजन देकर वातावरण को प्रदूषण मुक्त करता है। आज दुनिया की यह परिस्थिति वृक्ष काटने और वनभूमि के अविराम विनाश के कारण हुई है। वातावरण का संतुलन रखने के लिए 33% वनांचल की जरूरत है। हिन्दुस्तान समेत सारी दुनिया में यह प्रतिशत बहुत कम है। दूर संवेदन और उपग्रह की गणना के अनुसार हिन्दुस्तान में 19—20% वनांचल है जो निर्धारित सीमा रेखा से बहुत नीचे है। वृक्षारोपण कार्यक्रम, वनांचल का संरक्षण और नए-नए वन भूमि का सृजन अत्यधिक तत्परता से होना चाहिए ; जैसे शत्रु को रोकने के लिए सेना गश्त लगाती है।

पश्यतैनान् महाभागान् परार्थैकान्त जीवितान्,
वातवर्षातप हिमान् सहन्ते वारयन्ति नः।

—भागवत्

यह समस्या सारे दुनिया की समस्या है। सारी दुनिया के वैज्ञानिक पर्यावरण सुधारने के लिए ध्यान दे रहे हैं। उम्मीद है कि सामूहिक प्रयास से हमारी धरती फिर निर्मल होकर फल-फूलों से भर जाएगी, प्राणियों के लिए होगा मनोरम आवासस्थल।

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः :

—ऋग्वेद

वृक्षारोपण : एक त्योहार

विजय कृष्ण

आदिकाल से ही वन-प्रकृति मनुष्य का सबसे निकटतम पड़ोसी रहा है। मनुष्य का जन्म सर्वप्रथम अरण्य की गोद में ही हुआ है। वन वृक्षों ने अपनी श्यामल शीतल छाया से मनुष्य को सूर्य की प्रखर ज्वाला से बचाया था। पेट की क्षुधा को खाद्य देकर शान्त किया था। लज्जा निवारण के लिये दिये थे अपने वल्कल।

प्रकृति के हर दुर्योग से मनुष्य अपने को वन की गोद में सुरक्षित अनुभव करता था। किन्तु वही मनुष्य क्रमशः सभ्य होकर वनों को काट कर निर्ममता से उनका हनन करने लगा। समय गुजरने पर वनों के उजड़ने से जो हानि होने लगी वह दृष्टिगोचर होते ही वह सतर्क हुआ कि अरण्यहनन एक प्रकार से आत्महनन ही है। इसके फलस्वरूप चारों ओर एक दिन जलहीन रेगिस्तान की सृष्टि हो सकती है और उसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। जागृत होने पर मनुष्य को समझ आ गई कि वृक्षारोपण ही इसका एक मात्र विकल्प है और इसीने वन महोत्सव का रूप लिया।

वन महोत्व के नाम से अधिकांश लोग परिचित हैं। सरल भाषा में इसे वृक्ष लगाने का त्योहार कहा जाता है। त्योहार शब्द देने का एक विशेष अर्थ है ताकि लोग इसे उसी हर्ष और उल्लास से दूसरे त्योहारों की तरह पालन करें। साधारणतः यह वर्षा के समय में ही यानी जुलाई एवं अगस्त महीने में लगाया जाता है। इसका कारण है कि वर्षा ऋतु उस समय सक्रिय होती है एवं वृक्ष लगाने के पश्चात् उसे अनुकूल वातावरण मिल जाता है।

भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी इसके पक्ष में सदैव यही कहा करती थीं कि प्रत्येक भारतवासी अगर यह प्रण लें कि एक संतान के परिप्रेक्ष्य में एक वृक्ष लगायें तो हमारा देश हरा भरा हो जायगा और इसके साथ हमारी बहुत समस्याओं का समाधान हो जायगा।

एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक वारनर के कथनानुसार प्राचीन काल में भारत की भूमि का 80 प्रतिशत भाग वनाच्छादित था परन्तु समय परिवर्तन के साथ साथ मनुष्य अपने हित के लिये इस वन सम्पदा को धीरे-धीरे नष्ट करने के कार्य में लग गया एवं इसके महत्व को भूलने लगा।

इतिहास साक्षी है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं उनके पौत्र सम्राट अशोक ने वृक्ष रोपन के महत्व को अपने राज्य में एक विशेष स्थान दिया था और इसके लिये अपने दरबार में उच्च कोटि के लोगों की समिति बनाई थी जिनका काम निरीक्षण एवं रिपोर्ट देना था। तत्पश्चात मुगल सम्राट एवं अंग्रेज साम्राज्य ने वन का बहुत अंश काट कर खेत बनवा डाला जिसके फलस्वरूप वन का क्षेत्रफल कम हो गया। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने नील की खेती करवानी शुरू कर दी जिससे उन्हें आर्थिक लाभ तो हुआ परन्तु धरती बंजर बन गई।

विश्व का अरण्य क्षेत्रफल 700 करोड़ हेक्टेयेर था जिसकी गणना 1900 ई० में की गई थी (वैज्ञानिक ब्रीवेकर 1984 के अनुसार) दुर्भाग्यवश जब वही गणना 1975 में ली गई तो अरण्य का क्षेत्रफल घटकर 289 करोड़ हेक्टेयेर रह गया और अगर इसी प्रकार वन की क्षति

होती गई तो आगामी 2000 ई० तक केवल 237 करोड़ हैक्टेयेर ही बचा रहेगा।

सेन्ट्रल फौरेस्ट्री कमीशन 1980 (Central Forestry Commission 1980) के रिपोर्ट के अनुसार असम, अरुणाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, केरल के पश्चिमी तट अन्य प्रान्तों एवं क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक वनाच्छादित है। उस रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया कि भारतवर्ष में कुल मिलाकर 7.4 करोड़ हेक्टेयेर वन भूमि है जो पूरे भौगोलिक क्षेत्र का 22.7 प्रतिशत है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक वृक्ष हमारा किसी न किसी रूप में उपकार करता ही जाता है उसके बिना हम एक पल भी जीवित नहीं रह सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि श्वास-प्रश्वास को भी इसने बंधन में बाँध रखा है। हम अपना प्राणवायु 'आक्सीजन' इसी से पाते हैं। हमारे छोड़े हुए प्रश्वास में जो जहरीला कार्बन डाई आक्साइड है (CO_2) उसे वृक्ष निर्विरोध आत्मसात् कर लेता है और बदले में हमें जीवन धारण के लिये शुद्ध 'आक्सीजन' देता है। इससे बढ़कर इसकी महानता और क्या हो सकती है।

वृक्षों के हमारे ऊपर अनेक उपकार हैं जिनका सम्पूर्ण विवरण देना इस लेख में सम्भव नहीं। हाँ कुछ प्रस्तुत किया जा सकता है।

वृक्षों की जड़े जो काफी गहराई तक जमीन में फैल जाती हैं मिट्टी को बांध कर रखती हैं। वर्षा के पानी का शोषण भी करती है एवं फिल्टर का काम करती है। जिन पहाड़ों पर वृक्षों की संख्या कम हो गई है वहाँ वर्षा होते ही सीधे-नदियों में पानी भर जाता है जिसके फलस्वरूप बाढ़ होती है और कहीं न कहीं या किसी न किसी अंचल में यह विकराल रूप धारण कर लेता है जिससे जान, माल, घर, मवेशी इत्यादि की बड़ी हानि होती है और सरकार के लिये यह भारी सरदर्द बन जाता है। इस कारण से सरकार भी अब बहुत सतर्क हो गई है और वृक्ष रोपन को उत्साहित कर रही है।

वृक्ष हमारे दिन प्रतिदिन की आवश्यकता के अतिरिक्त हमें दवायें, कागज, घर बनाने के लिये लकड़ी, रबर, गोंद, काफी, कोको इत्यादि सामग्रियाँ उपलब्ध कराते रहते हैं जो केवल इस पीढ़ी के लिये नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिये भी अति आवश्यक है। भारतवर्ष ही नहीं अपितु विश्व के सभी उन्नत देश इस समस्या को बहुत ही गंभीर रूप से ले रहे हैं और वृक्ष रोपन को उत्साहित कर रहे हैं। अतएव हम संकल्प लें कि अधिक से अधिक वृक्ष लगावें और उससे लाभ उठायें।

*

खनिज संपदा के सूचक पौधे

आर० सी० श्रीवास्तव

मनुष्य ने जब इस धरती पर आँखें खोली, तब से वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पौधों पर ही आश्रित रहा। तन ढकने से लेकर क्षुधा-शान्ति, रहने के लिए छाया या घर, उठने-बैठने, चलने-फिरने, सोने-जागने, सभी का समाधान जंगल में था। इतिहास साक्षी है कि पुरा-प्रस्तर युग में यदि वनफल, कन्दमूल, धनुष की प्रत्यन्चा, शरीर के बचाव के लिए वृक्ष की छाल तथा बीमारियों के उपचार हेतु अचूक जंगली जड़ी-बूटियाँ थीं तो आज भी किसी न किसी रूप में हमारी सारी आवश्यकताएँ पेड़-पौधों से ही पूरी होती हैं। हाँ इतना अवश्य है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ उनकी उपयोगिता का रूप भी बदलता जा रहा है। अब तो पौधे अन्तरिक्ष-यात्रा में भी हमारा साथ दे रहे हैं।

निरन्तर चल रहे शोध-कार्यों के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि पेड़-पौधे धरती के अन्दर छुपे हुए खनिजों का पता लगाने में भी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इस समय तो यह एक प्रमुख विषय ही बन गया है जिसे 'भू-गर्भ वनस्पतिकी' के अन्तर्गत रखा गया है।

पौधों के माध्यम से खनिजों का पता लगाने के लिए उनका जैव-भूगर्भ-रासायनिक परीक्षण किया जाता है जो इस तथ्य पर आधारित होता है कि पौधे खनिजों की कुछ मात्रा अपनी जड़ों द्वारा पत्तियों तक पहुँचाते हैं। इस प्रकार पत्तियों के रासायनिक परीक्षण से उस स्थान पर पृथ्वी के नीचे उपस्थित खनिज की उपस्थिति का संकेत प्राप्त हो जाता है।

खनिजों की अधिकता के कारण कुछ पौधों में विशेष लक्षण दिखते हैं जिसके आधार पर भी उस स्थान पर खनिज विशेष की उपस्थिति का पता लगता है। उदाहरणार्थ "मैपल" वृक्ष की पत्तियाँ धरती में ताँबे की अधिकता होने से पीली पड़ जाती हैं।

इसी प्रकार यदि पृथ्वी के अन्दर यूरेनियम एवं थोरियम जैसे रेडियोधर्मी तत्व हैं तो उस स्थान पर पाए जाने वाले पौधों की प्रजनन कोशिकाओं में भी परिवर्तन आ जाता है। प्राय: फूलों के रंग में परिवर्तन भी इसका सूचक होता है।

ब्रिटेन, स्पेन एवं बेल्जियम में यह देखा गया है कि 'वायोला-कैलेमिनेरिया' (जिंक वायलेट) नामक पौधा वहीं बहुतायत से पाया जाता है जहाँ धरती में भारी मात्रा में जस्ता होता है। **असेरिया वल्गेरिस, एल्साइन वर्ना, थैलेप्सी एलेपस्ट्रे** नामक तीन अन्य पौधे भी जस्ते के सूचक हैं। इन पौधों की पत्तियों में जस्ते के आक्साइड जमा हो जाते हैं। अत: पत्तियों के विश्लेषण से जस्ते की उपस्थिति का पता चल जाता है। स्वीडन में 'लाइकानिस एल्पाइना' नामक पौधे से निकिल की उपस्थिति का पता चला।

मध्य अफ्रीका में 'जाइरे' में पाया जाने वाला पौधा **होमेनिएस्ट्रम राबर्टी**, कोबाल्ट का सूचक है तथा स्पेन में प्राप्य **एटेलैरिया सिटेलिया**, से पारे के विषय में जानकारी मिलती है। इसी प्रकार ब्राजील में सोने की

खानों का पता **लेनिसेरा कन्फ्यूसा, स्कोपिया टाइफा** तथा **सल्पाइजा स्पेसिओसा** पौधों से तथा हीरे की खानों का पता '**वेलोजिया कैंडिडा**' पौधे से चला।

हमारे देश में उड़ीसा राज्य में सुकिन्दा घाटी में निकिल धातु की बड़ी खानों का पता '**मिलियूसा वेल्यूटिना**' **सेलोटस फिलिपेन्सिस** तथा **काम्ब्रेटम डिकेन्ड्रम** से चला। राजस्थान के बीकानेर तथा बाडमेर जिलों में **एरवा टोमेन्टोसा** तथा मदार (**केलाट्रापिस प्रासेरा**) नामक पौधों से पृथ्वी में छुपे 'जिप्सम धातु' की उपस्थिति का पता लगा। कर्नाटक में लौह-समृद्ध स्थानों पर 'पोएसिलोन्यूटान इन्डिकम' (जिसे स्थानीय भाषा में 'बल्लगी' कहा जाता है) की बहुतायत है। इन पौधों के अतिरिक्त **अंजनी (मेमिसिलान** की प्रजातियाँ) तथा लोध (सिम्लोकास की प्रजातियाँ) एल्यूमिनियम धातु की उपस्थिति का संकेत करती हैं।

कैक्टस की एक जाति 'प्रिकलीपियर' द्वारा मैगनीज धातु की सूचना मिलती है। ये पौधे प्रायः ऐसी जगह ही उगते हैं जहाँ पृथ्वी में मैगनीज धातु पाई जाती है। ताँबे की खानों का पता लगाने में 'एस्कालिजया' तथा **बेसियम ओटोपैटम, पालीकार्पा स्पाइरोस्टाइलिस** तथा **जिप्सोफिला पैट्रिनी** पौधों का सराहनीय योगदान रहा है। इन पौधों की सहायता से ही आस्ट्रेलिया एवं सोवियत संघ में बड़ी-बड़ी ताँबे की खानों का पता लगा।

इन निरन्तर प्रयासों एवं उनसे प्राप्त सफलताओं के फलस्वरूप ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए प्राकृतिक खजानों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में पेड़-पौधे ही हमारे मार्गदर्शक होंगे।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलान्यपि परार्थाय वृक्षः सत्पुरुषा इव॥

—विक्रमचरितम्-65

वृक्ष तो सज्जनों जैसे परोपकारी हैं। स्वयं धूप में खड़े रहते हुए भी वे दूसरों को छाया देते हैं। उनके फल भी दूसरे के उपयोग के लिये होते हैं।

ओजोन परत एवं औद्योगीकरण में सम्बन्ध

एस० एल० गुप्ता

पृथ्वी की सतह से 10 कि० मी० (ध्रुवों पर 19 कि० मी०) तक ट्रोपोस्फेयर परत में होने वाली रासायनिक एवं अन्य परिवर्तनीय क्रियाओं का हमारे दैनिक जीवन से सीधा सम्बन्ध है। ट्रोपोस्फेयर के ऊपर 80 कि० मी० तक स्ट्रेटोस्फेयर परत है जिसमें ओजोन गैस की एक मोटी परत विद्यमान है। इसी कारण इसको ओजोन परत भी कहा जाता है। जैसा कि हमें मालूम है ओजोन की यह परत हमारी पृथ्वी को सूर्य के नुकसानदायक परा बैंगनी किरणों (अल्ट्रा वायलेट रेज) के दुष्प्रभाव से रोकती है। जैसे-जैसे यह परत पतली होती जायेगी, त्वचा कैंसर और अन्य बीमारियों की जननी बनती जायेगी। यहाँ तक की समुद्री जीव-जन्तुओं एवं पौध जीवन को प्रभावित करने के अलावा मानव जीवन के लिए आवश्यक मुख्य फसलों जैसे गेहूँ, धान एवं ज्वार इत्यादि को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं।

बढ़ते औद्योगीकरण एवं विकास क्रियाओं के कारण वातावरण में हानिकारक पदार्थो की मात्रा बढ़ती जा रही है। अण्टार्कटिका में किए जा रहे अध्ययन से पता चला है कि रेफ्रिजरेशन, इन्सुलेशन में विलायक के रूप में प्रयुक्त किया जाने वाला क्लोरोफ्लोरोकार्बन का ओजोन क्षरण से सीधा सम्बन्ध है। ओजोन परत में हुए "खतरनाक छिद्र" का, जिसका पता डा० जो फारमन ने 1980 में लगाया था; कारण क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी०एफ०सी०) ही है। यह खतरा अब उत्तरी गोलार्ध में भी फैलता जा रहा है। हाल ही में आर्कटिक अभियान पर गये वैज्ञानिकों के एक दल ने वायुमण्डल के स्ट्रेटोस्फेयर क्षेत्र में ऐसे रसायनों की उपस्थिति देखी है जो बिल्कुल अण्टार्कटिका की तरह इस क्षेत्र के ओजोन परत को नष्ट करने में समर्थ है परन्तु भिन्न मौसम जलवायु के कारण उत्तरी ध्रुव में ओजोन परत को उतना खतरा नहीं है जितना दक्षिणी ध्रुव में। द्रष्टव्य है कि दक्षिणी ध्रुव में एक अनुमान के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत ओजोन परत नष्ट हो चुकी है। वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि आर्कटिक क्षेत्र मेंओजोन परत के क्षरण का प्रभाव तब तक नहीं मिलेगा जब तक इस क्षेत्र के ऊपर छाये हुए ठण्डे एवं घने कुहरे की परत है। अतएव अभी यह नहीं कहा जा सकता कि ओजोन क्षरण प्रारम्भ हो चुका है और यदि हो चुका है तो कितना।

वैज्ञानिकों के अनुसार हालांकि यह प्राथमिक अध्ययन है परन्तु इसकी प्रमाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता अतएव पर्यावरणविदों को इस क्षेत्र में प्रदूषण खत्म करने के लिये तुरन्त कदम उठाना चाहिए जिससे पृथ्वी के इस सुरक्षा परत को बचाया जा सके। इसलिए सी० एफ० सी० के उत्पादन पर गम्भीरता से विचार जरूरी है। इस समय विश्व में इसका कुल उत्पादन लगभग दस लाख टन प्रतिवर्ष है जिसके 85 प्रतिशत उत्पादन के उत्तरदायी सं० रा० अमेरिका, यूरोपीय देश, सोवियत संघ एवं जापान है। सी० एफ० सी०, कार्बन डाइ आक्साइड

एवं मीथेन आदि गैसों की तरह ही एक ग्रीन हाऊस गैस है जो सूर्य के पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करती है।

ओजोन परत को नष्ट करने वाली रासायनिक प्रक्रिया चक्रवाती वायु प्रणाली (साइक्लोनिक विंड सिस्टम) में होती है। इसको "वोर्टेक्सेस" भी कहा जाता है। इसका निर्माण ध्रुवीय जाड़े में आरम्भ होकर वसन्त ऋतु तक चलता है। ओजोन परत को नुकसान करने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक "वोर्टेक्सेस" उस क्षेत्र में मौजूद रहता है। एक सम्भावना के अनुसार प्रतिदिन एक प्रतिशत ओजोन "वोर्टेक्सेस" के कारण आर्कटिक के ऊपर नष्ट हो रहा है।

सुरक्षा हेतु किये जा रहे उपाय—

क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी० एफ० सी०) के निर्माण एवं उपयोग को बन्द करने हेतु पहला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन माण्ट्रियल में 1987 में हुआ जिसमें भाग लेने वाले 30 देशों में इस बात पर सहमति हुई कि इसके निर्माण को धीरे-धीरे बंद किया जायेगा और सन् 1998 तक निर्माण में लगभग 50 प्रतिशत की कटौती की जायेगी। परन्तु जैसा कि डा० वाटसन का कहना है कि इस संधि के बावजूद वातावरण में ओजोन परत को कम करने वाले रसायनों की मात्रा अगले पचास वर्षों में दुगुनी हो जायेगी। आर्कटिक अभियान के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि आर्कटिक क्षेत्र में भी बिल्कुल वही रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है जो अण्टार्कटिक क्षेत्र में हो रही है। आर्कटिक क्षेत्र के "वोर्टेक्सेस" को ओजोन परत क्षरण के पहले अगर तोड़ भी दिया जाय तो भी उस वातावरण में उपस्थित रसायन वायुमण्डल के आक्सीजन से मिलकर पूरे उत्तरी गोलार्द्ध के ओजोन परत को नष्ट कर देगें।

पिछले वर्ष (फरवरी में) यूरोपीय समुदाय के पर्यावरण मन्त्रियों ने सन् 2000 तक उन सभी उद्योगों को बन्द करने पर सहमति प्रदान की जो क्लोरोफ्लोरोकार्बन का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त "जितनी जल्दी हो सके" के आधार पर इसके निर्माण में 85% तक की कटौती करने का भी प्रस्ताव है। संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम (यू० एन० ई० पी०) से सम्बद्ध एक वैज्ञानिक ने आशंका प्रकट की है कि क्लोरोफ्लोरोकार्बन पर तुरन्त रोक के बावजूद "खतरनाक छिद्र" एक सदी तक बना रहेगा। डा० जो फारमन के अनुसार यह कटौती एक उल्लेखनीय कदम है परन्तु इसके विपरीत हम वातावरण में सी० एफ० सी० की मात्रा प्राकृतिक रूप से सी० एफ० सी० क्षरण के मुकाबले पांच गुने से ज्यादा घोल रहे हैं।

यू० एन० ई० पी० एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा संयुक्त रूप से "ओजोन परत को बचाने हेतु" विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन मार्च में लंदन में किया गया जिसमें विश्व के पांचों महाद्वीपों के पर्यावरण मन्त्रियों ने हिस्सा लिया। लन्दन संगोष्ठी का एक मुख्य उद्देश्य विश्व के सर्वाधिक आबादी वाले पहले दो देशों चीन एवं भारत को सी० एफ० सी० के उपयोग पर कटौती हेतु समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए सहमत कराना था। इस समय इन देशों ने आर्थिक सहायता एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के शर्त पर अपनी सहमति का संकेत दिया था।

इसके पश्चात नीदरलैंड, फ्रांस एवं नार्वे की सरकारों के बीच हेग में पर्यावरण प्रश्नों पर नये यूरोपीय कानून के राजनीतिक पहलुओं पर विचार विमर्श हुआ। इधर यूरोपीय समुदाय ने ओजोन पर शोध हेतु कैम्ब्रिज (इङ्गलैण्ड) में एक केन्द्र की स्थापना की पुष्टि कर दी और उधर अमेरिकी

सीनेट में सन् 2000 तक शतप्रतिशत सी० एफ० सी० नष्ट करने का विधेयक लाने का प्रस्ताव है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि मांट्रियल में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के बाद यूरोपीय समुदाय द्वारा फरवरी में आयोजित सम्मेलन एक महत्वपूर्ण कदम था (1998 तक सी० एफ० सी० के उत्पादन में (50% तक की कटौती) क्योंकि केवल यूरोप ही विश्व के कुल सी० एफ० सी० उत्पादन का 50% (लगभग पाँच लाख टन) उत्पादित करता है।

विकासशील देशों की स्थिति—

सी० एफ० सी० के मामले में विकासशील देशों की चिन्ता से विश्व को सर्वप्रथम अवगत कराने का श्रेय चीन एवं भारत को जाता है जिन्होंने सन् 1972 में स्टाकहोम में आयोजित प्रथम विश्व पर्यावरण संगोष्ठी में इस प्रश्न को उठाया था। लन्दन संगोष्ठी में भी चीनी प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष डा० लिउ मिंग पू ने इस बात को दोहराया कि विकसित देश विकासशील देशों में हो रहे वायुमण्डलीय प्रदूषण की कीमत पर काफी आगे बढ़ गये हैं तथा सस्ती ऊर्जा एवं श्रम के बल पर काफी लाभ अर्जित किये है जबकि प्रौद्योगिकी विकास की गति कम होने के कारण विकासशील देश इस मामले में काफी पीछे हैं। इसीलिए उन्होंने विकसित देशों द्वारा ओजोन परत सुरक्षा कोष की स्थापना और मांट्रियल समझौते में शामिल विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को मुफ्त औद्योगिकी हस्तांतरण का प्रस्ताव किया है। भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मन्त्री ने विकसित देशों के पक्षपातपूर्ण रवैये की गहरी आलोचना की। उनके विचार से वातावरण को प्रदूषित करने वालों को अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर इसका भुगतान करना चाहिए। चीन द्वारा प्रस्तावित कोष का भारत ने समर्थन किया क्योंकि इससे विकसित देशों में बढ़ते औद्योगीकरण के कारण विकासशील देशों में पिछले 30 वर्षों में हुए वातारण क्षरण को भी भरने में सहायता मिलेगी। इतना सब कुछ होने के बावजूद आज से ग्यारह वर्षों बाद विकासशील देशों में जो स्थिति आयेगी, उसकी परिकल्पना से ही भय लगता है।

सी. एफ. सी. के उत्पादन एवं उपयोग पर सन् 2000 तक पूर्णतया रोक लगाने हेतु नवीनतम समझौता मई में फिनलैण्ड की राजधानी हेलसिंकी में हुआ। इस समझौते पर अमेरिका, चीन तथा भारत एवं अन्य विकासशील देशों सहित कुल 80 देशों ने हस्ताक्षर किया। इस सम्मेलन में उपस्थित देशों ने विकासशील देशों में सी. एफ. सी. की जगह अन्य अहानिकारक रसायन के विकास एवं प्रौद्योगिकी हेतु एक विश्व कोष की स्थापना पर भी सहमति प्रदान की। इसे विकासशील देशों की एक भारी विजय समझी जायेगी। इस अन्तर्राष्ट्रीय कोष का बजट कई करोड़ डालर का होगा जिसमें सी. एफ. सी. के अतिरिक्त "ग्रीन हाउस प्रभाव" वाले अन्य हानिकारक गैसों/रसायनों पर भी अध्ययन एवं शोध की व्यवस्था की जायेगी।

सन् 2000 तक विश्व की वर्तमान जनसंख्या 500 करोड़ से बढ़कर 600 करोड़ हो जाने की स्थिति में सी. एफ. सी. की उत्पादन मात्रा को नियमित करने में कठिनाई सम्भावित है क्योंकि उसी अनुपात में खाद्य पदार्थों एवं ऊर्जा की माँग बढ़ेगी। इसलिये यह आवश्यक है कि सी. एफ. सी. के अलावा कृषि एवं उद्योग में प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य गैसों जैसे मीथेन, नाइट्रस आक्साइड की जगह अहानिकारक रसायन खोजे जायें। सी. एफ. सी.—12 की जगह इस्तेमाल होने वाले हाइड्रो-

क्लोरोकार्बन 134 ए पर शोध से काफी आशाएँ हैं। समय की मांग है कि सी. एफ. सी. पर तुरन्त रोक पर अन्तर्राष्ट्रीय बहस हो क्योंकि संसार के दोनों ध्रुवों पर ओजोन परत के क्षरण की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है। जितना ही ओजोन क्षरण होगा उतनी ही परावैंगनी किरणें पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश कर त्वचा कैंसर एवं आँख के रोगों को बढ़ायेंगी। इतना ही नहीं, ये किरणें गेहूँ, धान, सोयाबीन एवं मक्के जैसे मुख्य फसलों को नष्ट करने के अलावा समुद्री जीव मण्डल (पौधों सहित) को भी प्रभावित करेंगी।

*

सरल तरल जिन तुहिन कणों से
हँसती हर्षित होती है।
अति आत्मीया प्रकृति हमारे
साथ उन्हीं से रोती है।
अनजानी भूलों पर भी वह
अदय दंड तो देती है।
पर बूढ़ों को भी बच्चों सा
सदय भाव से सेती है।

—मैथिलीशरण गुप्त

अस्तित्व

आनन्द कुमार

आज के युग में
पौधों का अस्तित्व
मानव विकास के संग
लुप्तप्राय होता जा रहा है।

शायद मानव मस्तिष्क में
अभी यह समझ नहीं आ रहा
वह पौधों की नहीं
खुद की जड़ें काटता जा रहा है।

हे मानव! अब भी वक्त है
वृक्षारोपण अभियान तीव्र कर
अन्यथा तेरे भी अस्तित्व का
संकट गहराता जा रहा है।

कदम उठाने से पहले

नवीन चौधरी

सभ्यता की प्रगति से पहले भी मनुष्य बहुत कुछ समझने लगा था। 'आहार निद्रा भय मैथुनश्च' की तो कोई बात ही नहीं। प्रकृति के किन जीवों, वस्तुओं या घटनाओं से उसे लाभ या हानि होती है, इसका भी ख्याल रखना सीख लिया। इनमें जिससे भी उसका लाभ हुआ उसे अपने पास रखने या खुद उसके पास रहने लगा। इतना ही नहीं, भावना आगे बढ़ी तो मनुष्य इन्हें प्रेम करने लगा इनकी पूजा भी करने लगा।

सभ्यता का बहुत विकास हुआ तो पहले जिन्हें पास रखना आवश्यक समझता था, उन्हें पास रखना आवश्यक नहीं रहा प्रेम या पूजा तो और अनावश्यक हो गया। मनुष्य उनसे दूर रहने लगा, शायद घृणा भी करने लगा।

गाय, बैल, भैंस, घोड़े, हाथी आदि बहुत से जीव इसके उदाहरण हैं। वृक्षों के साथ भी ऐसा ही हुआ। लेकिन किसी जीव या वस्तु के शाश्वत महत्व को अस्वीकार करना किसी के लिए असंभव है। इस तथ्य को पेड़ पौधों ने बड़ी गम्भीरता से प्रमाणित किया।

किसी भी भाषा के प्राचीन से प्राचीन पुस्तकों का अवलोकन किया जाय, पेड़ पौधों का जिक्र अवश्य मिलेगा। मनुष्य ने वृक्ष को किस हद तक प्रेम किया इसके प्रमाण का भी अभाव नहीं।

हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों में पेड़-पौधों के प्रेम के साथ पूजा का उल्लेख है। कदम्ब को छोड़कर भागवत कथा (कृष्ण कथा) एवं अशोक वृक्ष को छोड़कर रामायण कथा अधूरी रह जायगी, गीता में कृष्ण ने कहा, अश्वत्थ सर्व वृक्षाणां .....।

जो लोग कृष्ण की पूजा करते हैं उन्हें पीपल का भी पूजा करनी चाहिए।

हिन्दुओं की श्रेष्ठ चिन्तन परम्परा 'आरण्यक' कहलाने लगी। उनके विकास में अरण्य की देन वे कैसे भूल सकते थे।

गौतम बुद्ध को जिस वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ उसे बोधि वृक्ष कहा गया। उसकी डालें विदेशों में भी लगाई गई।

पाश्चात्य परम्परा में भी अनेक वृक्ष महत्वपूर्ण माने गए। ओलाइव (जैतून) की डाल शान्ति पताका बन गई।

भारत के मनीषियों ने पेड़ पौधों के महत्व के बारे में अपनी वैज्ञानिक धारणा का भी परिचय दिया। चरक सुश्रुत आदि मनीषियों के वनस्पति ज्ञान को चुनौती देना आज भी बहुत आसान नहीं है।

प्राचीन काल के राजाओं-महाराजाओं में जो वास्तव में अपने समाज को प्रेम करते थे वे पेड़ पौधों की रक्षा ही नहीं उन्हें लगवाने पर भी उचित ध्यान देते थे। वृक्ष राह चलते लोगों का आश्रय बनता था।

सभ्यता-संस्कृति के निरन्तर बढ़ते कदम औद्योगिक क्रान्ति तक आ गए। इसने हमें कृत्रिम वस्तुओं से प्रेम और प्राकृतिक वस्तुओं से दूर रहना या नफरत करना सिखाया। प्राकृतिक वस्तु होने के नाते हम पेड़-पौधों से दूर रहना

सीखने लगे। लंकाशायर व मैनचेस्टर से हमें यही पाठ मिला। पेड़-पौधे और उनके फल-फूल आदि कल-कारखानों के लिए कच्चामाल बनकर रह गए। कच्चा माल के रूप में जिन पेड़ पौधों की हमें जरूरत नहीं थी उनका सफाया होने लगा। पेड़-पौधों को काटने के लिये हमने अच्छे तेज धार वाले हथियार बना लिए।

सभ्यता संस्कृति की सेवा में विज्ञान ने अच्छे-अच्छे उपकरण जुटाए। और तो और, आक्सीजन बनाने के कारखाने खुले। यदि कारखाने में हम 'प्राण-वायु' व प्राणदायी औषधियों का निर्माण कर सकते हैं तो प्रकृति का एहसान अब और कितना उठाते। चूल्हे में जाए पेड़-पौधे, अणु-भट्टी में जाए प्रकृति।

इस भावना के साथ हम प्रकृति की सहन शक्ति का मखौल उड़ाने लगे। प्रकृति मानव के लिए क्या करती है आराम के साथ हम यह भूलना चाह रहे थे। तभी वैज्ञानिकों ने खतरे की घंटी बजाई। हमारा पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इसमें 'प्राण वायु' का स्थान प्राणघातक वायु ले रहा है। जीव जन्तुओं की सुगठित शृङ्खला से कुछ जन्तु विलीन हो रहे हैं। शृङ्खला असन्तुलित हो रही है। प्रकृति व प्राकृतिक उपादानों का मजाक तत्काल बन्द कर उनका समादर करना ही होगा। वैसे भी विज्ञान को बार-बार प्रकृति के सामने झुकना पड़ता था। पर्यावरण प्रदूषण को लेकर तो विज्ञान ने अपना अहंकार विसर्जित कर प्रकृति के सामने घुटने टेक दिए। प्रकृति के मन्दिर में विज्ञान पुकारने लगा, मानव व पशु पक्षी की रक्षा करो। उनकी रक्षा करना अब मेरे बस की बात नहीं है।

आज आवश्यक है कि जिस सुगठित शृङ्खला को नष्ट करने में हम सभी लगे हुए थे, प्रायश्चित के रूप में उस शृङ्खला के पुनर्गठित होने में सहयोग करें। प्रकृति के छोटे-बड़े सभी उपादान का समादर करें। शृङ्खला के पुनर्गठित होने की मंगल कामना करें। विज्ञान के प्रासादों के सभी द्वार तथा खिड़कियों पर पहरा देने के लिए प्रकृति को आमंत्रित करना ही होगा। हर कदम उठाने से पहले उसकी अनुमति लेनी होगी। प्रकृति के ताल-लय-छन्द को भंग करने से हमारे जीवन में माधुर्य नहीं रहेगा, किसी प्रकार का सुख नहीं रहेगा। मानव जीवन में सुख देने का प्रधान स्रोत प्रकृति है, वनस्पति है। वनस्पति के मूक वाणी की उपेक्षा अनुचित है।

★

तेजाबी वर्षा : कितना हानिकारक ?

ए० आर० के० शास्त्री एवं एस० आर० गुप्ता

ग्रीष्म ऋतु की तपती दुपहरी में वर्षा की फुहार ऊमस से कितना छुटकारा दिलाती हैं, यह सभी अनुभव किये होंगे। वर्षा का मानव जीवन पर अपना अलग महत्व एवं प्रभाव है। उचित समय एवं मात्रा में होने वाली वर्षा जहां अच्छी फसल का द्योतक है, वहीं जल की समस्या को भी दूर करती है। परन्तु जहां एक ओर वर्षा आशा का संचार एवं एक नये भविष्य का उद्गार करती है वहीं दूसरी ओर बढ़ते उद्योगीकरण के कारण धीरे-धीरे विनाश का भी माध्यम बन रही है। हम जानते हैं कि उद्योगों से निकलने वाले हानिकारक तत्वों के रूप में सल्फर-डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन-डाइ-आक्साइड प्रमुख हैं जो वायुमण्डल में घुलते रहते हैं। वर्षा के पानी को पृथ्वी तक पहुँचने में वायुमण्डल से गुजरना पड़ता है जिससे मौजूद सल्फर डाइ-आक्साइड एवं नाइट्रोजन-डाइ-आक्साइड से क्रिया करने के फलस्वरूप एक नये हानिकारक मिश्रण का निर्माण होता है जो तेजाबी वर्षा के रूप में जाना जाता है। ऐसा नहीं है कि ये आक्साइड वातावरण में अपने प्राकृतिक रूप में मौजूद न रहते हों, परन्तु प्राकृतिक आक्साइड प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करके पौधों एवं जलीय पारिस्थितिकी को पोषित करते हैं। दूसरी ओर मानव निर्मित उद्योगों, तापीय परियोजनाओं, वाहनों के उद्भित पदार्थ तथा जीवाश्म ईंधन के जलने से उत्पन्न अप्राकृतिक आक्साइड पारिस्थितिकी संतुलन को असीमित रूप से नष्ट कर रहे हैं।

अम्लीय क्षेपण अब एक नयी पर्यावरणीय समस्या के रूप में आ रहा है जिससे संसार के वैज्ञानिक हतप्रभ हैं क्योंकि तेजाबी वर्षा न केवल जमीन, मृदा, मकान, मानव जीवन के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है वरन् फसल, पशु-पक्षी, यहां तक कि इस्पात पेण्ट इत्यादि के लिये भी हानिकारक हैं।

ये अम्ल अपने उद्भव स्थान से उड़कर हजारों मील दूर जाकर स्थापित होते हैं जिससे न केवल इनके उद्भव स्थल का पर्यावरण नष्ट होता है बल्कि ये रास्ते में पड़ने वाले समस्त वायुमण्डल को भी प्रदूषित कर देते हैं। अब वक्त आ गया है कि अम्ल निर्माण करने वाले गंधक एवं नत्रजन के यौगिकों के नियंत्रण के लिए उचित एवं कठोर कदम उठाया जाये।

प्राकृतिक वर्षा एवं तेजाबी वर्षा के जल में अंतर : शुद्ध वर्षा का पानी पी एच 5.0 से 6.0 के बीच होने के कारण थोड़ा अम्लीय परन्तु हानिकारक नहीं होता क्योंकि वातावरण में उपस्थित कार्बन-डाइ-आक्साइड से मिलकर कार्बोनिक एसिड का निर्माण करता है जो पृथ्वी में उपस्थित खनिज पदार्थ में घुल जाता है और वनस्पतियों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं सहित जीव-जन्तुओं को प्राप्य हो जाता है। भूकम्प, वनाग्नि और अन्य प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा वायुमण्डल में दूसरे उपस्थित तत्व वर्षा के पानी को अम्लीय बनाने में योगदान देते हैं परन्तु यह नगण्य होने के कारण हानिकारक नहीं होता। दूसरी ओर तेजाबी वर्षा का पी एच 5.6 से कम होने के कारण काफी अम्लीय होता है क्योंकि इनका निर्माण परिवहन, उद्योगों एवं तापीय परियोजनाओं से उत्पन्न सल्फर-डाइ-आक्साइड, नाइट्रोजन-डाइ-आक्साइड जैसे विषैले गैसों से होता है। ये गैसें

वायुमण्डल में क्रमश: सल्फेट एवं नाइट्रेट में परिवर्तित होकर वायुमण्डल की आर्द्रता (H_2O) से क्रिया करके अम्ल बनाते हैं जो तेजाबी वर्षा (Acid Rain) के रूप में पृथ्वी पर गिरती है।

तेजाबी वर्षा के निर्माण पर अन्य कारकों का प्रभाव : वैज्ञानिकों का मानना है कि तेजाबी वर्षा के निर्माण में जलवायु, भूमि संरचना, भूमि ढलाव, जीव जन्तु एवं पौधों की उपस्थिति एवं मानवीय क्रियाओं का अलग-अलग प्रभाव एवं सहयोग है। प्रतिवर्ष एवं प्रतिदिन वर्षा की मात्रा तेजाबी वर्षा के अध्ययन में काफी उपयोगी है। शुष्क वातावरण में वायु दिशानुसार क्षारीय धूल की मात्रा अधिक होने के कारण वातावरणीय अम्लीय काफी हद तक निष्क्रिय हो जाती है। दूसरी ओर आर्द्र जलवायु में अम्लता अधिक होने के कारण तेजाबी वर्षा अधिक होती है। मौसम के अनुसार वर्षा एवं हिमपात का भी अपना अलग योगदान है। उदाहरण के लिए अम्ल की अधिक मात्रा बीज अंकुरण के समय ज्यादा प्रभावी होती है जबकि वही मात्रा दूसरे समय पर हानिकारक होती है। हवा की दिशा एवं गति भी प्रदूषक तत्वों जैसे सल्फर एवं नाइट्रोजन के विस्तार में सहायक होती है।

किसी विशेष क्षेत्र की भूमि संरचना तेजाबी वर्षा के प्रभाव में सहायक सिद्ध होती है। कणीय कठोर पृथ्वी परत एवं पतली मृदा सतह वाले क्षेत्र तेजाबी वर्षा के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं क्योंकि उनका सीधा प्रभाव जल परत एवं कोमल पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। दूसरी ओर मोटी परत वाली मृदा तेजाबी वर्षा के प्रभाव को कम कर देती है। वनस्पति के प्रकार, उनकी ऊँचाई, पत्तियों की अधिक या कम संख्या इत्यादि का भी प्रभाव अम्लता कम या अधिक करने पर पड़ता है। घनी पत्तियों वाले वनस्पति तेजावी वर्षा को मृदा तक पहुँचने में बाधा का कार्य करते हैं। उच्च वाष्पोत्सर्जन करने वाले पौधे अम्लता को पत्ती की ऊपरी सतह पर सांद्रित कर देते हैं। इन सबसे अधिक एवं महत्वपूर्ण कारक मानवीय क्रियाएँ हैं क्योंकि जितना ईंधन हम जलायेंगे उतना ही अधिक प्रदूषक तत्व सल्फर एवं नाइट्रोजन के रूप में वातावरण में घुलेंगे और उतना ही अधिक तेजाबी बर्षा का हानिकारक प्रभाव होगा। दूसरी ओर कम गंधक युक्त कोयले का इस्तेमाल प्रदूषण कम करता है। कुछ कृषि क्रियाएं जैसे चूने का उपयोग निष्क्रिय क्षेत्र (Buffer zone) का कार्य करने के कारण अम्लता को कम करता है।

एक अनुमान के अनुसार विश्वभर में तेजाबी बर्षा के प्रथम तत्व सल्फर की 140 से 220 मिलियन मेट्रिक टन मात्रा प्रति वर्ष वातावरण में घुलती है जिसमें से 50% केवल मनुष्य द्वारा स्थापित उद्योगों आदि से उत्पन्न होती है। इस पचास प्रतिशत का 70% कोयले के जलाने से 16% पेट्रोलियम पदार्थों के जलने से तथा शेष 14% पेट्रोलियम शोधिकरण एवं अलौह पदार्थों के गलन से उत्पन्न होती है। दूसरे तत्व नाइट्रोजन के प्रमुख स्रोत उद्योग, कार ट्रक जैसे परिवहन आदि हैं। यह देखा गया है कि पिछले 20 वर्षों में जहाँ सल्फर प्रदूषण की मात्रा में थोड़ी बहुत कमी दृष्टिगोचर हो रही है वहीं नाइट्रोजन की मात्रा में बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे वायु प्रदूषण एवं तेजाबी वर्षा की प्रकृति में काफी बदलाव आया है।

तेजाबी वर्षा के हानिकारक प्रभाव : तेजाबी वर्षा के उद्गम एवं हानिकारक प्रभाव का स्थल एक ही एवं अनेकों हो सकते हैं क्योंकि प्रदूषक तत्व वायुदिशा एवं वेग के कारण कहीं भी जा सकते हैं। इसीलिए कहा गया है कि तेजाबी वर्षा कोई भौगोलिक या राजनीतिक सीमा नहीं मानती है। बम्बई कोयला शोधन संयत्र से उत्पन्न सल्फर-डाइ-आक्साइड दक्षिणी-पश्चिमी वायु द्वारा न्यू बाम्बे

अथवा वाशी जैसे दूरदराज के क्षेत्र में तेजाबी वर्षा उत्पन्न करती है। इसी वायु प्रवाह के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा वातावरण में छोड़े गये करोड़ो टन औद्योगिक विषैले पदार्थ कनाडा में तेजाबी वर्षा के क्रम में परिलक्षित होते हैं। दूसरी ओर स्वीडन में 75% तेजाबी वर्षा ब्रिटेन एवं प० जर्मनी के उद्योगों के कारण होती है। प० जर्मनी के कुल वन क्षेत्र का लगभग 30% धीमी मृत्यु का शिकार हो रहा है। इन सबके कारण यह एक राजनीतिक मुद्दा वन गया है।

तेजाबी वर्षा से होने वाले नुकसान अनेकों हैं और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है। शैवालो एवं अन्य जलीय पौधों के विकास में निम्न पी एच काफी बाधा पहुँचाते हैं। कार्बनिक पदार्थों का विखण्डन धीमी गति से होता है क्योंकि जीवाणुओं की मात्रा अम्लता के कारण कम हो जाती है जबकि फसलों की संख्या में वृद्धि होती है। इसके कारण झील के पानी तथा झील की सतह के पोषक तत्वों में संतुलन बिगड़ जाता है। मृदा तंत्र पर प्रभाव के कारण पौधों की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि जड़ों द्वारा खनिज पदार्थों का अवशोषण नहीं हो पाता। मृदा में ये खनिज तत्व पौधों एवं पशुओं के मृत कार्बनिक पदार्थ के रूप में आते हैं। रासायनिक विखण्डन प्रक्रिया में जीवाणु एवं कवक के सहयोग के कारण नाइट्रोजन साइकिल की प्रक्रिया चलती रहती है। कुछ सूक्ष्म जीवाणु वातावरण से नाइट्रोजन अवशोषित कर मृदा को देते हैं। तेजावी वर्षा मृदा पुनर्जनन की प्रक्रिया को नष्ट कर देते हैं। प्रथम में कार्बनिक पदार्थों के विखण्डन की प्रक्रिया और दूसरे नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले नील हरित शैवालों एवं जीवाणुओं की वृद्धि को रोक देते हैं। विदित हो कि नील हरित शैवाल पी एच के नीचे वृद्धि नहीं कर पाते जब कि क्षारीय परिस्थिति में ये पी एच 11 के ऊपर भी वृद्धि करते हैं। फिर अम्लता (निम्न पी एच) कैल्शियम और मैग्निशीयम जैसे पोषक तत्वों के बीच उपस्थित बंधन को तोड़ देती है जिससे मृदा की खनिज भण्डारण क्षमता का भी ह्रास होता है।

तेजाबी वर्षा पौधों में विषैले तत्वों के जमाव का भी कारण बनते हैं। उदाहरण के लिये लेट्यूस में कैडमियम जैसे विषैले भारी तत्वों का जमाव होने से यह बिक्री हेतु नहीं रह जाता। तेजाबी वर्षा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया एवं नये उत्पन्न ऊतकों पर भी अपना प्रभाव डालता है जिससे बीज, फल, मूल आदि की वृद्धि पर असर पड़ता है।

निम्न पी एच मछलियों, सैलामण्डरों तथा मेंढकों आदि के अण्डों को नष्ट कर देते हैं जिससे पूरी भोजन शृङ्खला प्रभावित हो जाती है। मत्स्य जनसंख्या कम होने का एक कारण तेजाबी वर्षा है। अम्लता शरीर में कैल्शियम स्तर को कम करके अण्डों के निर्माण में बाधा पहुँचाती है जिससे जनन प्रक्रिया प्रभावित हो जाती है। किसी विषम परिस्थिति में अण्डे का निर्माण रुक जाता है। परन्तु अभी यह ठीक से नहीं पता है कि वे कौन से कारण हैं जो वयस्क मछली की मृत्यु में सहायक होते हैं हालांकि अम्लता की मात्रा झील के पानी में अधिक होने पर मछली के शरीर की जीवरासायनिक प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर देता है।

पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण इमारतें, मूर्तियों में गलन की प्रकिया तेजाबी वर्षा के कारण होने से पुरातत्व-विदों के समक्ष एक नया संकट उत्पन्न हो गया है। ताज महल के पीले पड़ते संगमरमर को बचाने हेतु अभियान शुरू हो चुका है और प्रथम चरण में कोयले के इञ्जन से शंटिंग करने वाले इञ्जनों को हटाया जा चुका है। इस्पात और पेण्ट भी इसके प्रभाव से नहीं बच सके हैं। मनुष्यों में श्वास की बीमारी, त्वचा रोग एवं आंखों में जलन का एक कारण तेजाबी वर्षा भी हैं।

नियंत्रण के उपाय :

कोई भौगोलिक या राजनीतिक सीमा न होने के कारण तेजाबी वर्षा का अंतर्राष्ट्रीय एवं सर्वमान्य नियंत्रण का उपाय अति आवश्यक है। तेजाबी वर्षा के कारक सल्फर एवं नाइट्रोजन के उत्सर्जन तथा इनके वायुमण्डल में प्रवेश पर रोक ही एक मात्र नियंत्रण का उपाय है। इनके नियंत्रण पर होने वाले खर्चों तथा विकास प्रक्रिया को प्रभावित किये बिना उपायों पर ध्यान देना जरूरी है। सामान्यतया निम्नलिखित तीन प्रक्रियाओं को अमल में लाया जा रहा है :

(1) ऊर्जा संरक्षण के रूप में कम ईंधन का उपयोग और जरूरत पड़ने पर ही उपयोग तथा संशोधित थर्मल इंसुलेशन द्वारा,

(2) जीवाश्म ईंधन की जगह दूसरे स्रोतों जैसे सौर ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग, तथा

(3) कम गंधक युक्त ईंधन का उपयोग तथा उच्च तकनीकी का उपयोग जो उत्सर्जन को निम्न से निम्न कर सके।

कई सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा तेजाबी वर्षा पर शोध किया जा रहा है फिर भी भविष्य बहुत उत्द्वाहवर्द्धक नहीं कहा जा सकता क्योंकि विश्व जनसंख्या बढ़ने के साथ ही तेल का संरक्षित भण्डार शनैः शनैः खत्म होता जा रहा हैं और उसकी जगह कोयले का अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। बढ़ते उद्योगीकरण एवं परिवहन के फलस्वरूप वातावरण में सल्फर एवं नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती जायेगी। स्थिति की भयावहता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है।

*

पत्र-पुष्प-फलच्छाया-मूल-बल्कल-दारुभिः।
गन्ध निर्यास भस्मास्थि तोक्मैः कामान् वितन्वते ।।

—भागवत्

वृक्ष अपने सभी अवयवों से—पत्तों से, फूलों से, फलों से, छाया से, जड़ों से, छाल से, लकड़ियों से, गन्ध से, गोंद से, राख से, कोयले से, और टहनियों से सबकी कामनायें पूरी करते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों एवं दुर्लभ लुप्त प्राय वनस्पतियों का संरक्षण— आज की आवश्यकता

आनन्द कुमार

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे प्राकृतिक संसाधनों का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है और वो दिन दूर नहीं जब वे एक दिन समाप्त हो जायेंगे एवं मनुष्य की आधारभूत आवश्यकतायें—जैसे रहने एवं फसल उगाने के लिए भूमि, पीने के लिए पानी और जीवित रहने के लिए हवा जैसी प्राकृतिक वस्तुएँ, जिनका निर्माण मनुष्य के हाथ में नहीं है, भी पूरी नहीं हो पायेंगी। प्राकृतिक संसाधनों के अभाव का मुख्य कारण मनुष्य ही है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी का विकास होता गया, हमारे संसाधन भी कम होते गये, क्योंकि मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिए उनका उपयोग करता गया।

इस धरती पर जीव उत्पत्ति के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया, क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों के बिना जीवित रहना असम्भव है। पहले संसाधनों के अभाव का प्रश्न इसलिए नहीं उठा क्योंकि उस समय जनसंख्या कम थी तथा संसाधनों के उत्पाद एवं प्रयोग में समन्वय था, लेकिन अब जनसंख्या काफी बढ़ जाने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल अत्यधिक बढ़ गया है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे संसाधन सीमित मात्रा में रह गये हैं। अत: अब मनुष्य यह सोचने पर बाध्य हो गया है कि कैसे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हो सके अन्यथा मानव का अस्तित्व भी इस धरती पर समाप्त हो जायेगा।

संसाधनों को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : (1) प्राकृतिक संसाधन—जैसे हवा, पानी, धरती, जीव-जन्तु, ऊर्जा, पौधे, ईंधन, कच्चा माल—ये सब हमारे पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं। (2) मनुष्य द्वारा बनाये गये संसाधन—जैसे सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक-आर्थिक संरचना, आबादी आदि।

भौगोलिक परिस्थितियों में विभिन्नता के कारण भारत में आर्द्र शुष्क पर्णपाती उष्ण कटिबंधीय, शुष्क पर्णपाती उष्ण कटिबंधीय, अर्ध सदाबहार, सदाबहार, 'मैनग्रोव' और घास के मैदान इसके उष्ण कटिबंधीय भागों में तथा सम शीतोष्ण अर्ध शीतोष्ण तथा शीतोष्ण आदि किस्म की वनस्पतियां पायी जाती हैं। ऐसा अनुमान है कि भारत में 15,000 प्रकार के पुष्पीय पौधे मिलते हैं, जिसमें से लगभग 4200 प्रजातियां केवल भारतवर्ष में ही पायी जाती हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों में वनों के विनाश के कारण या बहुत अधिक मात्रा में काटने के कारण, बढ़ते शहरीकरण एवं विकास के कारण बहुत सी प्रजातियां दुर्लभ या लुप्तप्राय हो गयी हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस समय भारत में लगभग 1500 दुर्लभ एवं लुप्तप्राय पुष्पीय पौधों की प्रजातियां हैं, जो कि यहां पाये जाने वाले कुल पुष्पीय पौधों का 10% है। यदि हमारी बहुत सी जंगली वनस्पतियां लुप्त हो गयीं, तो उससे जो क्षति हमें होगी, उसकी आपूर्त्ति असम्भव है। क्योंकि हमारे फसलों के वंशज जंगली प्रजातियां ही है, जिनके द्वारा हम फसलों की नई किस्मों को विकसित कर सकते हैं। बहुत से दुर्लभ पौधे अति सुन्दर हैं जो

पुंकेशर नाग-फण के समान होते हैं जो जायांग को ऊपर से ढके रहते हैं। फूल अधिकांशतः फरवरी से नवम्बर तक आते हैं यद्यपि वर्ष भर ही थोड़ी संख्या में दिखाई पड़ते हैं। इसका फल, भूरे रंग का तोप के गोले के आकार का होता है, जो पकने पर एक अद्भुत गंध स्फुटित करता है।

फल का कठोर छिलका बर्तन रूप में प्रयोग होता है। दक्षिण-अमेरिका के प्रवासी फल का गूदा खाते हैं तथा इसे पेय रूप में प्रयोग करते हैं। लकड़ी मुलायम होने के कारण अनुपयोगी होती है लेकिन पालतू पशुओं के चर्म-रोग चिकित्सा में उपयोगी है। वृक्षों को हिन्दू और बौद्ध मंदिरों के आस पास धार्मिक दृष्टिकोण से लगाया आता है।

नागलिंगम् के पौधे को बीजों द्वारा आसानी पूर्वक उगाया जाता है। इसके तैयार किये हुए पौधे रोपण हेतु सामान्य दर पर भारतीय वनस्पति उद्यान में संयुक्त निदेशक की अनुमति से उपलब्ध किये जा सकते हैं।

आजकल नागलिंगम् के पौधे कलकत्ता महानगर में कई उद्यानों तथा सड़कों के किनारे बहुतायत से लगाये जा रहे हैं, जिनकी सुरक्षा, विशेष बाड़ द्वारा की जा रही है। निकट भविष्य में ये वृक्ष अपने पूर्ण विकास व फूलने-फलने पर नगर वासियों, जन-साधारण तथा पथिकों को एक अलौकिक आनन्द व सौन्दर्य-बोध का सृजन करते हुए कलकत्ता की त्रिशतवार्षिकी स्वरूप याद किये जायेंगे। ★

वृक्षों के बिना मानव जीवन

भगवती प्रसाद उनियाल

अगर पेड़ पौधे न होते धरा पर
तो जीने का आनन्द हमारा न होता।
न तो फूल खिलते, न फल मूल मिलते
प्रकृति का सुहाना नजारा न होता।
न शीतल हवायें न मिलती दवायें
जीवन सुरक्षित हमारा न होता।
दुल्हन के हाथों मेंहदी न रचती
फूलों से सेहरा संवारा न होता।
वनों की अगर यों कटाई न होती
तो जीवन मरुस्थल हमारा न होता।
हिमालय जो नीचे चला आ रहा है
प्रलय सा ये भीषण नजारा न होता।
ये नदियों की बाढ़ें, ये मौसम बदलना
प्रदूषण का पुरजोर नारा न होता।
ये जो लुप्त होती हुई जातियाँ हैं
बचाने का उद्यम हमारा न होता।
अगर बाग बगिया उजाड़ी न होती
तो प्लास्टिक से घर को संवारा न होता।
अगर पेड़ पौधे सभी व्यर्थ होते
तो फिर ये विभाग हमारा न होता।

अविसीनिया अफिसिनालिस लिन (*Avicennia officinalis* Linn.)
मुख्य तना के आधार पर श्वासमूल दिखता हुआ एक मैनग्रोव वृक्ष
फोटो : भा० व० स०, अ० नि० प० पोर्ट ब्लेयर

भारतीय वनस्पति उद्यान में सुशोभित कैनन बॉल वृक्ष
कोउरोपिटा गुआनेन्सिस आउब्ल (*Couropita guianensis* Aubl.)
फोटो : डी० एस० पाण्डेय व आर० के० चक्रवर्ती

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-700 001 द्वारा प्रकाशित
तथा अरुण प्रिंटिंग प्रेस, 9-बी, सिकदरपारा स्ट्रीट, कलकत्ता-7 (फोन : 38-4201) द्वारा मुद्रित ।